क्या भारत का और चीन का यह दृष्टिकोण उचित है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी का मुख्य दायित्व विकसित राष्ट्रों पर है। और चूंकि विकासशील राष्ट्र विकास की निचली सीढ़ी पर हैं, अतः उन्हें अपने विकास के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि का अधिकार है। सच्चाई यह है कि भारत और चीन सहित विश्व के सभी राष्ट्रों को विकास एवं ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के सम्बंध को तोड़ने की दिशा में त्वरित एवं प्रभावी प्रयास करने होंगे।

जलवायु परिवर्तन एवं भारत का दायित्व

डॉ. रामप्रताप गुप्ता

बढ़ते प्रमाणों के साथ इस बात में अब कोई संदेह नहीं रह गया है कि वैश्विक तापमान में बढ़ती दर से वृद्धि हो रही है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय पैनल के अनुसार बीसवीं शताब्दी में वैश्विक तापमान में 0.1 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक की दर से वृद्धि हुई है जो सदी के अंतिम 50 वर्षों में ज़्यादा तेज़ रही। अगर हम 1850 के बाद की अवधि के 12 सबसे गर्म वर्ष देखें तो उनमें से 11 तो 1995-2006 की अवधि में रहे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि तापमान वृद्धि में समय के साथ-साथ बढ़ोतरी हो रही है। अंतर्राष्ट्रीय पैनल ने यह भी भविष्यवाणी की है कि 21वीं शताब्दी में वैश्विक तापमान में वृद्धि की दर 0.2 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक रहेगी और शताब्दी के अंत में तापमान 2 डिग्री सेल्सियस अधिक होगा। यह वृद्धि 4 डिग्री सेल्सियस तक भी हो सकती है।

वैश्विक तापमान में वृद्धि और उसके कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन और मानव पर उसके प्रतिकूल प्रभावों के प्रति पूरा विश्व चिंतित है और संयुक्त राष्ट्र संघ वर्ष के अंत में जलवायु परिवर्तन पर एक शिखर सम्मेलन आयोजित करने जा रहा है।

तापमान वृद्धि के कारण जलवायु में बहु-आयामी परिवर्तन दिखाई देने लगे हैं। इसकी वजह से एक ओर तो विश्व के जल भण्डार (उत्तरी ध्रुव और हिमालय के ग्लेशियर) तेज़ी से पिघलने लगे हैं। दूसरी ओर, कुछ क्षेत्रों में वर्षा की कमी एवं सूखे की बढ़ती प्रवृत्ति, तो अन्य में भारी वर्षा की प्रवृत्ति देखी जा रही है। हिन्दुओं की आस्था का केन्द्र तथा हिमालय का दूसरा सबसे बड़ा ग्लेशियर गंगोत्री आज से 200 वर्ष पूर्व की तुलना में अब 3 गुना अधिक तेज़ी से पिघलता जा रहा है।

उत्तरी ध्रुवीय एवं हिमालयी ग्लेशियरों के तेज़ी से पिघलने से अब समुद्र में पूर्व की तुलना में अधिक मात्रा में पानी आ रहा है और उसका स्तर बढ़ता जा रहा है। सन 1963 से 2003 की अवधि में समुद्र के स्तर में वृद्धि की दर 1.8 मि.मी. प्रति वर्ष रही है; अंतिम 10 वर्षों में तो यह दर 3.9 मि.मी. प्रति वर्ष रही। केवल हिमालय ग्लेशियरों के पिघलने से 21वीं शताब्दी में समुद्र स्तर में 18 से 59 से.मी. की वृद्धि का अनुमान है। समुद्र के स्तर

में वर्तमान वृद्धि से ही अनेक तटीय बस्तियां और कम ऊंचे द्वीपों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। भारत की बात करें तो पिछले वर्षों में पश्चिम बंगाल में स्थित सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान के 420 वर्ग कि.मी. क्षेत्र के द्वीप डूब चुके हैं और वहां की बस्तियों को अन्यत्र जाना पड़ा है। इन द्वीपों के वासी यह भी नहीं जानते कि वे अपनी त्रासदी के लिए किसे दोष दें। 21वीं शताब्दी में समुद्र के स्तर में वृद्धि से तो भारत के मुम्बई और चेन्नै जैसे महानगरों के अस्तिव पर भी आंच आएगी।

भारत जिस क्षेत्र में स्थित है, उसमें वर्षा की कुल मात्रा में तो कमी परन्तु उसकी सघनता में वृद्धि संभावित है। इसके प्रमाण मिलने भी लगे हैं। वर्षा के स्वरूप में इस परिवर्तन के कारण भारत को सूखे और बाढ़ की स्थिति का एक साथ सामना करना पड़ेगा। पिछले वर्षों में वर्षा की तीव्रता एवं सघनता में वृद्धि के कारण बाढ़ों से प्रभावित क्षेत्र बहुत बढ़ गया है जिसके कारण 3 करोड़ की आबादी को भयंकर बरबादी का सामना करना पड़ रहा है। वर्षा की मात्रा में कमी से गर्मियों में नदियों में पानी काफी कम हो गया है जिससे इनमें रहने वाले जीव-जन्तुओं का अस्तित्व खतरे पड़ गया है और किनारे की बस्तियों तथा बांधों में पानी आना कम हो गया है। वैसे ग्रीष्मकाल में नदियों में पानी की मात्रा में कमी के पीछे वर्षा में कमी के साथ-साथ अन्य कारण भी हैं।

गंगोत्री अब 3 गुना अधिक तेज़ी से पिघल रहा है...

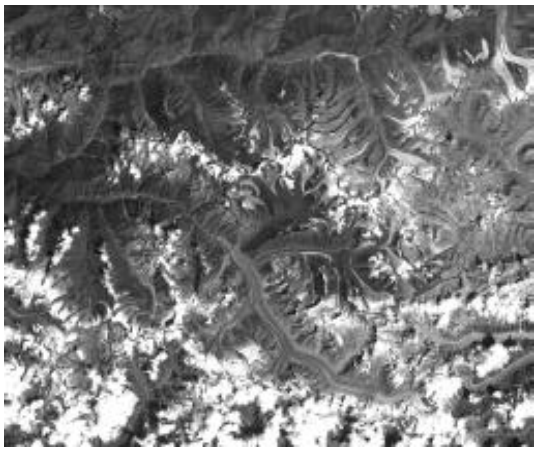

भारत के कृषि क्षेत्र के दो तिहाई क्षेत्र में असिंचित खेती होती है। ऊष्ण और उप-ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में स्थित भारत में वर्षा की मात्रा में तो कमी होगी ही, साथ ही उसमें उतार-चढ़ाव भी बढ़ जाएंगे। तापमान में वृद्धि से मिट्टी की आर्द्रता भी तेज़ी से वाष्पीकरण का शिकार होगी। इससे जहां सिंचित क्षेत्र में सिचाई की आवश्यकता बढ़ेगी, वहीं असिंचित क्षेत्र की उत्पादकता में कमी होगी। इससे करोड़ों किसानों की आजीविका तो खतरे में पड़ेगी ही, भारत की खाद्य सुरक्षा पर भी प्रश्नचिन्ह लग जाएंगे। कई वर्षों से भारत में खाद्यान्न का उत्पादन स्थिर है और आने वाले वर्षों में उसमें कमी की आशंका बढ़ जाएगी। इससे भारत को 1960 के दशक जैसी स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।

जलवायु और वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन से वनों की जैव विविधता में कमी आने की संभावना है जिससे वनों पर निर्भर वनवासियों की आजीविका भी प्रभावित होगी।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत की कृषि और वनों पर निर्भर दो तिहाई आबादी जलवायु में परिवर्तन से सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभावित होने वाली है।

वैश्विक तापमान में वृद्धि और तद्जनित जलवायु में होने वाले परिवर्तनों के पीछे विश्व में ग्रीनहाउस गैसों अर्थात कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन और कुछ अन्य गैसों का बढ़ता उत्सर्जन है। विकसित राष्ट्रों में औद्योगीकरण की शुरुआत के साथ कोयले, तेल और गैसों के बढ़ते उपयोग के चलते ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन भी बढ़ता गया है। इस बढ़ते उत्सर्जन का मुख्य दायित्व भी विकसित राष्ट्रों पर ही है। आंकड़े बताते हैं कि सन् 1800 के बाद पर्यावरण में जो कार्बन डाइऑक्साइड पहुंची है उसमें से 50 प्रतिशत के लिए तो विकसित राष्ट्र ज़िम्मेदार हैं जहां विश्व आबादी का केवल 20 प्रतिशत हिस्सा रहता है। विकसित राष्ट्रों के निवासी विकासशील राष्ट्रों के निवासियों की तुलना में 4 गुना अधिक कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं।

आंकड़ों की इसी पृष्ठभूमि में जलवायु पर हुए क्योटो सम्मेलन में कहा गया था कि ग्रीनहाउस गैसों के

उत्सर्जन में कमी का मुख्य दायित्व विकसित राष्ट्रों का ही है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भारत तथा चीन जैसे राष्ट्रों का योगदान तो मात्र 12-13 प्रतिशत ही है। विकासशील राष्ट्रों के दबाव के कारण विकसित राष्ट्रों ने ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के सन 1990 के स्तर में 7.5 प्रतिशत की कमी लाने की सहमति दी है। यद्यपि अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया ने इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया है।

यहां प्रश्न यह उठता है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन और उसके कारण तापमान में वृद्धि की समस्या के संदर्भ में क्या भारत का और चीन का यह दृष्टिकोण उचित है कि इसमें कमी का मुख्य दायित्व विकसित राष्ट्रों पर है। और चूंकि विकासशील राष्ट्र विकास की निचली सीढ़ी पर हैं, अतः उन्हें अपने विकास के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि का अधिकार है। इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमी यह है कि अगर अमेरिका सहित सभी विकसित राष्ट्र ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि को जारी रखते हैं तो विश्व के तापमान में वृद्धि पर रोक लगाना असंभव है और अगर ऐसा होता है तो उसके सबसे घातक परिणाम विकासशील राष्ट्रों की गरीब आबादी को ही भुगतना होंगे।

अतः भारत और चीन सहित विश्व के सभी राष्ट्रों को विकास एवं ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के सम्बंध को तोड़ने की दिशा में त्वरित एवं प्रभावी प्रयास करने होंगे। विद्वानों का मत है कि वैश्विक तापमान में वृद्धि को 20वीं शताब्दी की 0.10 सेल्सियस प्रति दशक पर ही बनाए रखने के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कम से कम 20 प्रतिशत की कमी लानी होगी। यह तभी संभव है जब विश्व के सभी देश सामूहिक प्रयास करें और विकास प्रक्रिया और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के परस्पर सम्बंध को कमज़ोर कर दिया जाए।

वर्तमान में भारत की आर्थिक नीतियां उर्जा के अकुशल उपयोग को बढ़ावा देती हैं। हम अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में मानव एवं पशु ऊर्जा की जगह मशीनी ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहित कर रहे हैं। परिवहन क्षेत्र की नीतियों के उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि भारत किस तरह ऊर्जा सघन तरीकों का उपयोग कर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को बढ़ावा दे रहा है। सड़क परिवहन की अपेक्षा रेल में प्रति यात्री ऊर्जा खपत कई गुना कम होती है। परन्तु हमारी सरकारों का सारा ध्यान सड़क परिवहन के विस्तार पर ही केन्द्रित है। सारी राशि सड़कों के विस्तार, उन्हें चौड़ा करने तथा उन्हें विश्व स्तरीय बनाने पर ही खर्च की जा रही है। इसके पीछे कार, जीप उत्पादकों के स्वार्थ काम कर रहे हैं। इसी वजह से सड़क परिवहन में भी सार्वजनिक परिवहन के स्थान पर कार, जीपों आदि के रूप में निजी परिवहन साधनों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिनमें ऊर्जा का और भी अकुशल उपयोग होता है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की दृष्टि से वर्तमान में कार उद्योग को दिया जा रहा प्रोत्साहन बहुत ही गलत है। परिवहन ही नहीं, सम्पूर्ण विकास नीतियां ऊर्जा के अकुशल उपयोग को प्रोत्साहित कर रही हैं। यही कारण है कि भारत द्वारा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि की दर विश्व औसत की अपेक्षा 4 गुना अधिक तेज़ है तथा एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 2035 तक भारत अमेरीका के बराबर ग्रीनहाउस गैसें उत्सर्जित करने लगेगा।

इस सारी पृष्ठभूमि में क्योटो जैसे सम्मेलनों में भारत को चाहिए कि वह अपनी सारी शक्ति विकसित राष्ट्रों से कार्बन साख वसूलने तथा विकास हेतु अपने तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों के ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन जारी रखने के अधिकार पर केन्द्रित करने की बजाय विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ मिलकर उत्पादन प्रक्रिया में ऊर्जा के कुशलतम उपयोग तथा उर्जा के न्यूनतम उपयोग वाली जीवन शैली के विकास के लिए संघर्ष करे। इस दिशा में महात्मा गांधी के आदर्शों का अनुसरण हमारी मदद करेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***